सरस्वतीतन्त्रम्

सरस्वतीतन्त्रम्

अनुवादक
एस. एन. खण्डेलवाल

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी ● दिल्ली

1946
ST-76

सरस्वतीतन्त्रम्

[मूल संस्कृत तथा भाषानुवाद]

अनुवादक
एस. एन. खण्डेलवाल

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी दिल्ली

© भारतीय विद्या प्रकाशन

(१) पो० बा० नं. ११०८ कचौड़ी गली, वाराणसी—२२१००१

(२) १, यू. बी. जवाहर नगर, बैंग्लोरोड, दिल्ली—११०००७

मूल्य १५ रु०

प्रथम संस्करण; १९९६ ई०

मुद्रक—

न्यू दीपक प्रेस

राजघाट, वाराणसी

निवेदन

सरस्वती तन्त्र मूलतः स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है। यह किसी बृहद् तन्त्रग्रन्थ का अंश प्रतीत होता है। इसकी प्रतियाँ एशियाटिक सोसायटी बंगाल में ६००७ तथा ६०६, राजेन्द्र लाल मित्र की संस्कृत पुस्तिका के विवरण संख्या ४४७ तथा २६१ और बड़ौदा पुस्तकालय में क्रमसंख्या २६१ के रूप में उपलब्ध है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के ग्रन्थ संख्या २६१३८ के रूप में भी इसका अंकन हैं। मैमन सिंह जिला के पं मथुरानाथ तथा पावना के पं क्षितीशचन्द्र भट्टाचार्य के संग्रह में भी इसकी पाण्डुलिपि रक्षित है।

यह ग्रन्थ शिवपार्वती संवादात्मक है। इसमें छःपटल है। जैसा कि इसका नाम है, इसमें सरस्वती उपासना का अलग से कोई भी विवरण नहीं मिलता। इसमें मूलाधार आदि चक्रों में देवध्यान, निर्वाण मुक्ति, कालिका आदि देवियों के मन्त्र, योनिमुद्रा, मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य, कुल्लुका, महासेतु, प्राणयोग, शोधन आदि साधक के लिये अत्यन्त हितकारी साधनांग का समावेश है। किसी भी तन्त्र मार्ग से साधना करने पर उक्त साधनोग का ज्ञान तथा सम्यक् अनुशीलन आवश्यक है। इस प्रकार से यह ग्रन्थ समस्त शाक्ततन्त्रों की साधना के लिये एक दिशानिर्देश का बोधन कराता है। साधनाङ्ग के ज्ञान के अभाव में सरस्वती विद्या कदापि सिद्ध नहीं हो सकती।

इस ग्रन्थ का नाम सरस्वती तन्त्र रखा गया है। वास्तव में भगवती सरस्वती कुलकुण्डलिनि का उर्ध्वमुखी रूप हैं। महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती रूप से सप्तशती में देवी के जिन रूपत्रय का वर्णन है, वह वास्तव में कुलकुण्डलिनी ही के तीन रूप हैं। नाद-विन्दु तथा कला से साधक सामान्यतः परिचित हैं। कला का पर्यवसान ही महाकालिका हैं। नाद का पर्यवसान ही महासरस्वती का रूप है और विन्दु का परम-चरम में पर्यवसान ही महालक्ष्मी का रूप है। इन्हीं तीनों रूपों का उत्कर्ष ही सप्तशती में वर्णित है। महासरस्वती ही इस स्थूल देह में स्वर-व्यंजन रूपा हो जाती हैं। सूक्ष्मदेह में वही नाद हैं और वह नाद अन्त में प्रणवरूपता को प्राप्त करके महासरस्वती में लीन हो जाता है। यहीं मन्त्र चैतन्य तथा वास्तविक मन्त्रार्थ स्थिति की प्राप्ति है। जहाँ कहीं भी मन्त्रोपासना या जपप्रक्रिया की साधना की जाती है, वहाँ प्रकारान्तर से महासरस्वती की ही साधना होती है, चाहे वहां किसी भी देवता की साधना क्यों नहीं की जाये। नाद का पर्यवसान होने के अनन्तर ही महालक्ष्मी की प्रकृत साधना विन्दुलीनता के रूप में सम्भव है।

काली कलनात्मिका हैं। कलन मन का कृत्य है। मन से ही काल की कलना होती है। मन के विलीन होते ही काल स्तब्ध हो जाता है, खोजने पर भी उसका सन्धान नहीं मिलता। काली की उपासना से मन का यह कलन व्यापार समाप्त हो जाता है और अब भूत-भविष्य-वर्तमान रूप खण्डकाल के विलीन होने पर नित्य वर्तमान रूप अखण्ड काल का साक्षात्कार होने लगता है। इसी स्थिति में यथार्थ प्रकृत नाद का साक्षात्कार होता है। यह प्रकृत नाद श्रुतिगोचर होने वाला योगीगण द्वारा अनुभूत नाद कदापि नहीं है। प्रकृतनाद की ही धारा समस्त मातृकाओं का एकीकरण करते हुये महासरस्वती का साक्षात्कार कराती है।

इस तंत्र के प्रारम्भ में ही मातृकाओं की स्थिति का वर्णन करते हुये उन्हें क्रमशः निम्नस्थ चक्र से उर्ध्वस्थ चक्र में ले जाने का क्रम बतलाया गया है। इस प्रकार से निम्नस्थ चक्र की मातृका अपने से उर्ध्व चक्र में विलीन हो जाती है। ऐसा पुनः होता है अर्थात् निम्नस्थ चक्र की मातृका जिस चक्र में प्रविलीन हुई थी, अब वहाँ से उस चक्र की मातृका अपने से उर्ध्व चक्र में जाकर समाहित हो जाती है। आज्ञाचक्र पर्यन्त ऐसा उत्तरोत्तर होता रहता है। इस प्रक्रिया में सुषुम्ना ही सूत्रात्मा है। वह समस्त चक्रों को प्राणरस से युक्त करती 'हंसः' का साक्षात् कराती है। यही है वास्तविक सरस्वती उपासना अथवा सरस्वती तन्त्र। यह प्राणरस 'हंसः' ही अपनी उन्नीत स्थिति में आत्मरस 'सोऽहम्' में समाहित हो जाता है। यही सरस्वती तन्त्र का सार रहस्य है।

रामनवमी, १९९६ ई.
बी ३१/३२, लंका
वाराणसी

निवेदक
एस. एन. खण्डेलवाल

विषयानुक्रमणिका

प्रथमः पटलः	...	...	१
द्वितीयः पटलः	...	...	४
तृतीयः पटलः	...	...	८
चतुर्थः पटलः	...	...	११
पञ्चमः पटलः	...	...	१४
षष्टः पटलः	...	...	१६

सरस्वतीतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

श्रीपार्वत्युवाच—

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्तियः ।
शतकोटिजपेनापि तस्य विद्या न सिध्यति ॥ १ ॥
महादेव महादेव इति यत् पूर्वसूचितम् ।
एतत्तत्वं महादेव कृपया वद् शङ्कर ॥ २ ॥

पार्वती कहती हैं—हे महादेव ! जो मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य तथा योनिमुद्रा नहीं जानते, उन्हें शतकोटि संख्यात्मक जप करने से भी विद्या सिद्ध नहीं होती । आपने पहले भी यही कहा हैं । हे शङ्कर ! इस तत्व को (पुनः) कृपापूर्वक कहिये ॥१-२॥

ईश्वर उवाच

मन्त्रार्थं परमेशानि सावधानावधारय ।
तथाच मन्त्रचैतन्यं निर्वाणमुत्तमोत्तमम् ॥ ३ ॥
प्रसङ्गात् परमेशानि निगदामि तवाज्ञया ।
मूलाधारे मूलविद्यां भावयेदिष्टदेवताम् ॥ ४ ॥

ईश्वर कहते हैं—हे परमेश्वरी ! तुम सावधान होकर मन्त्रार्थ तथा मन्त्र चैतन्य को सुनो । हे परमेश्वरी ! तुम्हारी आज्ञा के अनुसार प्रसंगवशात् उत्कृष्टतम स्थिति निर्वाण के सम्बन्ध में भी कहूंगा । मूलाधार पद्म में अवस्थित मूलविद्या का (कुण्डलिनी का) इष्ट रूप में चिन्तन करो ॥ ३-४ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशां भावयेत् परमेश्वरीम् ।
भावयेदक्षरश्रेणी मिष्टविद्यां सनातनीम् ॥ ५ ॥

परमेश्वरी की भावना शुद्ध निर्मल स्फटिक के समान करना चाहिए । उस मूलाधार कमल में स्थित व, श, ष, स अक्षरों को सनातनी इष्ट विद्या रूप से भावना करो ॥ ५ ॥

मुहूर्तार्द्धं विभाव्यैतां पश्चाद्ध्यानपरो भवेत् ।
ध्याने कृत्वा महेशानि मुहूर्तार्द्धं ततः परम् ॥ ६ ॥

ततो जीवो महेशानि मनसा कमलेक्षणे ।
स्वाधिष्ठानं ततो गत्वा भावयेदिष्टदेवताम् ।। ७ ।।
बन्धूकारूणसङ्काशां जवासिन्दूरसन्निभाम् ।
विभाव्य अक्षरश्रेणीं पद्ममध्यगतां पराम् ।। ८ ।।
ततो जीवः प्रसन्नात्मा पक्षिणा सह सुन्दरि ।
मणिपूरं ततो गत्वा भावयेदिष्टदेवताम् ।। ९ ।।

जीव मुहूर्त्तमात्र काल पर्यन्त इनका चिन्तन करके ध्यानरत हो जाये। हे महेश्वरी ! हे कमलनेत्रों वाली ! तदनन्तर मन द्वारा स्वाधिष्ठान चक्र में जाकर इष्टदेव का चिन्तन करे। वहाँ वन्धूकारूण, जवापुष्प तथा सिन्दूर के समान गाढ़े रक्तवर्ण युक्त अक्षर ब, भ, म, य, र, ल की इष्टदेवता रूप से भावना करके प्रसन्न-चित्त हो जाये। हे सुन्दरी ! वह प्रसन्नचित्त जीव मन द्वारा मणिपूर चक्र में जाकर इष्ट का चिन्तन करे ।। ६-९ ।।

विभाव्य अक्षरश्रेणीं पद्ममध्यगतां पराम् ।
शुद्धहाटकसङ्काशां शिवपद्मोपरि स्थिताम् ।। १० ।।
ततो जीवो महेशानि पक्षिणा सह पार्वति ।
हृत्पद्मं प्रययौ शीघ्रं नीरजायतलोचने ।। ११ ।।
इष्टविद्यां महेशानि भावयेत् कमलोपरि ।
विभाव्य अक्षरश्रेणीं महामरकतप्रभाम् ।। १२ ।।
ततो जीवो वारारोहे विशुद्धं प्रययौ प्रिये ।
तत्पद्मगहनं गत्वा पक्षिणा सह पार्वति ।। १३ ।।
इष्टविद्यां महेशानि आकाशोपरि चिन्तयेत् ।
पक्षिणा सह देवेशि खञ्जनाक्षि शुचिस्मिते ।। १४ ।।
इष्टविद्या महेशानि साक्षादब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
विभाव्य अक्षरश्रेणीं हरिद्वर्णां वरानने ।। १५ ।।
आज्ञाचक्रे महेशानि षट्चक्रे ध्यानमाचरेत् ।
षट्चक्रे परमेशानि ध्यानं कृत्वा शुचिस्मिते ।। १६ ।।
ध्यानेन परमेशानि यद्रूपं समुपस्थितम् ।
तदेव परमेशानि मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति ।। १७ ।।

मणिपूर चक्रस्थ दशदलपद्म में विशुद्ध अक्षर श्रेणी ड ढ ण त थ द ध न प फ का शिरः पद्म के ऊपर स्थित परमदेवतारूप से चिन्तन करे। हे महेश्वरी ! हे कमललोचनी ! तदनन्तर जीव शीघ्रता से (मन द्वारा) हृदयकमल में पहुँचे ।

हे महेशानी ! इष्टविद्या का चिन्तन पद्म के ऊपर स्थित रूप से करे। वहाँ अक्षर श्रेणी क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ (द्वादशदलपद्म) का चिन्तन महामरकत मणि के वर्ण से करे।

हे पार्वती ! हे सुन्दरी ! तत्पश्चात् जीव विशुद्ध कमल में जाकर वहाँ हरित वर्ण के अक्षर श्रेणी (१६ स्वरवर्ण का) का चिन्तन साक्षात् ब्रह्मरूपिणी इष्टविद्या-रूपेण करे। इसके पश्चात् आज्ञाचक्र में (मन द्वारा) जाकर उस चक्र में स्थित अक्षर ह, क्ष के साथ अभेद भावना से इष्ट देवता की भावना करे ! हे शुचिस्मिते ! यह षट्चक्र ध्यान का क्रम है। इस ध्यान के द्वारा जो रूप प्रतिभात होता है, वही मन्त्रार्थ है ॥ १०-१७ ॥

। इति सरस्वतीतन्त्रे प्रथमः पटलः ।

। सरस्वतीतन्त्र का प्रथम पटल समाप्त ।

द्वितीयः पटलः

ईश्वर उवाच

तथाच मन्त्र चैतन्यं लिङ्गागमे प्रकाशितम् ।
योनिमुद्रा मयाख्याता पुरा ते रुद्रयामले ॥ १ ॥
इदानीं श्रूयतां देवि निर्वाणं येन विन्दति ।
प्रपञ्चोऽपि ततो भूत्वा जीवस्तु पक्षिणा सह ॥ २ ॥
प्रययौ परमं रम्यं निर्वाणं परमं पदम् ।
सहस्त्रारं शिवं पूज्यं तन्मध्ये शाश्वती पुरी ॥ ३ ॥
तास्तु देवि पुरीं विद्धि सर्वशक्तिमयीं प्रिये ।
पक्षिणा सह देवेशि जीवः शीघ्रं प्रयाति हि ॥ ४ ॥

ईश्वर कहते हैं —हे देवी ! मन्त्र चैतन्य किसे कहते हैं, यह लिंगागम में कहा गया है । पहले रुद्रयामल तन्त्र में मैंने योनिमुद्रास्वरूप का उपदेश दिया है । अब जिसके द्वारा निर्वाणरूपी परम सुख मिलता है, वह सुनो । जीव प्रपंचरूप हो अर्थात् समस्त प्रपंच को, विश्व को, अपने में अभेदरूप से देखकर पक्षी के साथ (पक्षी अर्थात् उर्ध्वगति रूपी स्पन्द के साथ) निर्वाण रूप परम पद में गमन करता है । सहस्त्रदल कमल मंगलमय है और पूज्य स्थान है । वह नित्य पुरी भी है । हे देवी ! हे प्रिये ! वह पुरी सर्वशक्तिमयी है ।

यहाँ यह भावना करो कि विश्व प्रपंच की निर्माणोपयोगी समस्त सामग्री वहाँ है । कुण्डलिनी के साथ जीव को उस पुरी में ले जाना चाहिये ॥ १-४ ॥

विभाव्य अक्षरश्रेणीममृतार्णवशायिनीम् ।
सदाशिवपुरं रम्यं कल्पवृक्षतलस्थितम् ॥ ५ ॥
नानारत्नसमाकीर्णं तन्मूलं कमलानने ।
वृक्षञ्च परमेशानि ततं त्रिगुणात्मकम् ॥ ६ ॥
पञ्चभूतात्मकं वृक्षं चतुःशाखासमन्वितम् ।
चतुःशाखां चतुर्वेदं चतुर्विंशतितत्त्वकम् ॥ ७ ॥

अब समस्त अक्षर समूह अमृत समुद्र में शयन कर रहे हैं, यह चिन्तन करके वक्ष्यमाण विषय का चिन्तन करे । हे कमलानने ! कल्पवृक्ष के नीचे मनोरम सदा-

शिवपुरी है। उसका मूल नानाप्रकार के रत्नों के द्वारा व्याप्त है। हे परमेश्वरी ! वह वृक्ष सर्वदा त्रिगुणात्मक है, सत्व-रज-तमोमय है। वह पंचभूतमय वृक्ष ऋक्-यजुः साम एवं अथर्व रूपी चार शाखाओं से शोभित है। यही २४ तत्वात्मक भी है ॥ ५–७ ॥

चतुर्वर्णयुतं पुष्पं शुक्लं रक्तं शुचिस्मिते।
पीतं कृष्णं महेशानि पुष्पद्वयं परं शृणु ॥ ८ ॥
हरितञ्च महेशानि विचित्रं सर्वमोहनम्।
षट्पुष्पाणि महेशानि षड्दर्शनमिदं स्मृतम् ॥ ९ ॥
अन्यानि क्षुद्रशास्त्राणि शाखानि मीनलोचने।
तानि सर्वाणि पत्राणि सर्वशास्त्राणि चेश्वरि ॥ १० ॥

हे शुचिस्मिते ! उस वृक्ष का पुष्प चार वर्ण युक्त है। यथा शुक्ल, रक्त, पीत एवं कृष्ण। हे महेश्वरी ! और भी दो प्रकार के पुष्प हैं। वे हैं हरितवर्ण तथा नानाविचित्र वर्ण वाले। वे सभी मन को मोहित करने वाले हैं। ये ६ प्रकार के पुष्प ही षड्दर्शनशास्त्र हैं।

हे मीननेत्रे ! अन्य छोटे-छोटे शास्त्र वृक्ष की छोटी शाखायें हैं ॥ ८–१० ॥

इतिहासपुराणानि सर्वाणि वृक्षसंस्थितम्।
त्वगस्थिमेदमज्जानि वृक्षशाखानि यानि च ॥ ११ ॥
तानि सर्वाणि देवेशि इन्द्रियाणि प्रकीर्त्तितम्।
सर्वशक्तिमयं देवि विद्धि त्वं मीनलोचने ॥ १२ ॥

इतिहासपुराणादि इस वृक्ष के त्वक्, अस्थि तथा मेद एवं मज्जारूप हैं। हे देवेशी ! वृक्ष की शाखा आदि को इन्द्रिय भी कहा गया है। हे मीननेत्रोंवाली ! तुम उक्त वृक्ष को सर्वशक्तिमय जानो ॥ ११–१२ ॥

एवद्भूतं महावृक्षभ्रमरैः परिशोभितम्।
कोकिलैः परमेशानि शोभिता वृक्षपक्षिभिः ॥ १३ ॥

हे परमेश्वरी ! यह महावृक्ष अमरदेवों द्वारा परिशोभित है। कोकिल प्रभृति वृक्ष के पक्षियों द्वारा भी यह शोभित है ॥ १३ ॥

सुशोभितं देवगणै र्धनरत्नादिकांक्षिभिः।
एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधो रत्नवेदिकाम् ॥ १४ ॥

तत्रोपरि महेशानि पर्यङ्कं भावयेत् प्रिये।
सूक्ष्मं हि परमं दिव्यं पर्यङ्कं सर्वमोहनम् ॥ १५ ॥

धनरत्नादि की अभिलाषा रखने वाले साधक को देवताओं से शोभित कल्पतरु का चिन्तन करके उसकी छाया में नीचे रक्खी रत्नमयी वेदिका की भावना करनी चाहिये। हे प्रिये ! हे महेशानी ! उस वेदिका पर सूक्ष्म परम दिव्य, सर्वमोहन पलंग की भावना करे ॥ १४-१५ ॥

चन्द्रकोटिसमं देवि सूर्यकोटिसमप्रभम्।
शीतांशुरश्मिसंयुक्तं नानागन्धसुमोदितम् ॥ १६ ॥
नानापुष्पसमूहेन रचितं हेममालया।
ततः परं महेशानि योगिनीकोटिवेष्ठितम् ॥ १७ ॥
योगिनीमुखगन्धेन भ्रमराः प्रपतन्ति च।
योगिनी मोहिनी साक्षात् वेष्ठितं कमलेक्षणे ॥ १८ ॥

हे देवी ! वह पलंग करोड़ों चन्द्रमा के समान तथा करोड़ों सूर्य के समान प्रभायुक्त हैं। वह चन्द्र किरणों से युक्त तथा विभिन्न सुगन्धों से आमोदित हैं।

यह पलंग नानापुष्प समूह से सजाई गई है तथा स्वर्णमालाओं से सुशोभित है। हे महेश्वरी ! यह पलंग करोड़ों योगिनियों से घिरी हुई हैं। उन योगिनियों के मुख की सुगन्ध से आकर्षित होकर भ्रमरगण वहाँ आ रहे हैं। हे कमलवदने ! जिन योगिनी के लिये यह पलंग घिरी है, वे योगिनी साक्षात् मोहिनीरूप हैं ॥ १७-१८॥

अत्यन्तकोमलं स्वच्छं शुद्धफेनसमं प्रिये।
पर्यङ्कः परमेशानि सदाशिवः स्वयं पुनः ॥ १९ ॥

हे प्रिये ! वह अत्यन्त कोमल तथा शुद्ध फेन के समान स्वच्छ पलंग है। हे परमेश्वरी ! स्वयं सदाशिव ही पलंग स्वरूप हैं ॥ १९ ॥

जीवः पुष्पं वदेत् देवि भावयेत्तव पार्वति।
सदाशिवं महेशानि तन्महाकुण्डलीयुतम् ॥ २० ॥

हे देवी ! जीव पुष्प स्वरूप है, वह तुम्हारी भावना करे। हे महेश्वरी ! महाकुण्डलीयुक्त सदाशिव हैं ॥ २० ॥

कामिनीकोटिसंयुक्तं चामरैर्हस्तसंस्थितम्।
एवं विभाव्य मनसि सदा जीवः शुचिस्मिते ॥ २१ ॥

हे शुचिस्मिते ! (शुद्ध हास्य करनेवाली) वे सदाशिव करोड़ों कामिनी-गण से युक्त हैं। कामिनी हाथ में चामर लिये है। जीव को सदा इसी प्रकार से चिन्तन करना चाहिये ॥ २१ ॥

यस्य यस्य महेशानि यदिष्टं कमलानने।
तस्य ज्ञानसमायुक्तो मनसा परमेश्वरि ॥ २२ ॥
जीवोध्यानपरो भूत्वा जपेदस्य शतं प्रिये।
मन्त्राक्षरं महेशानि मातृकापुटितं क्रमात् ॥ २३ ॥

हे महेशानी, परमेश्वरी ! कमलवदने ! जिनका जिनका जो भी इष्ट है, वे मन ही मन उस इष्ट के साथ ज्ञानयुक्त हो ध्यानरत रहें और इष्टदेव के मन्त्राक्षरों को मातृकावर्ण द्वारा क्रमशः पुटित करके सौ वार जप करें ॥ २२–२३ ॥

कृत्वा जीवः प्रसन्नात्मा जपेदस्य शतं प्रिये।
यत्संख्यापरमारेणौ पार्थिवे परिवर्त्तते।
तावद्वर्षसहस्त्राणि शिवलोके महीयते ॥ २४ ॥

जीव प्रसन्नचित्त स्थिति में इष्टमन्त्र १०० वार जपे। इससे पार्थिव परमाणुओं की जितनी संख्या है, उतने हजार वर्ष पर्यन्त जीव शिवलोक में निवास करता है।

। इति सरस्वतीतन्त्रे द्वितीयः पटलः।

। द्वितीय पटल समाप्त।

तृतीयः पटलः

देव्युवाच–

कुल्लुका कीदृशी नाथ सेतुर्वा कीदृशो भवेत् ।
कीदृशो वा महासेतुर्निर्वाणं त्वथ कीदृशम् ॥१॥
अन्यथा कथितं यन्मे कीदृशं तद्वदस्व मे ॥२॥

देवी कहती हैं—हे प्रभो ! कुल्लुका कैसा है ? सेतु-महासेतु तथा निर्वाण क्या है ?

आपने जितने जपांग कहे हैं, वे किस प्रकार के हैं ? ॥ १–२ ॥

ईश्वर उवाच–

गुह्याद् गुह्यतरं देवि तव स्नेहेन कथ्यते ।
बिना येन महेशानि निष्फलञ्च जपादिकम् ॥३॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवी ! जिसके बिना जप प्रभृति निष्फल हो जाते हैं, उस गुह्यतम ज्ञान को तुम्हारे प्रेमवश प्रकाशित करता हूँ ॥३॥

तारायाः कुल्लुका देवि महानीलसरस्वती ।
पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लुका परिकीर्त्तिता ॥४॥

हे देवी ! महानीलसरस्वती का बीज (ह्रीं स्त्री हुँ) समस्त तारामन्त्रों का कुल्लुका है । पंचाक्षरी मंत्र को कालिका का कुल्लुका कहते हैं ॥४॥

कालीकूर्चवधुमाया फट्कारान्ता महेश्वरि ।
छिन्नायास्तु महेशानि कुल्लुकाष्टाक्षरी भवेत् ॥५॥

हे महेश्वरी ! काली बीज, कूर्चबीज, वधुबीज तथा मायाबीज के अन्त में 'फट्' लगाने से जो पंचाक्षर मन्त्र होता है, वही काली देवी का कुल्लुका कहा जाता है । (क्रीं हुं स्त्रीं ह्रीं फट्) । हे महेश्वरी ! अष्टाक्षरी मन्त्र छिन्नमस्ता देवी का कुल्लुका कहा गया है ॥५॥

वज्रवैरोचनीये च अन्ते वर्म प्रकीर्त्तयेत् ।
सम्पत्प्रदायाः प्रथमं भैरव्याः कुल्लुका भवेत् ॥६॥

'वज्रवैरोचनीये' पद के अन्त में 'फट्' का उच्चारण करने से यह अष्टाक्षर हो जाता है (वज्रवैरोचनीये फट्)। भैरवी का प्रथम बीज ही धनदा का कुल्लुका कहा गया है ॥६॥

श्रीमत्रिपुरसुन्दर्याः कुल्लुका द्वादशाक्षरी ।
वाग्भवं प्रथमं बीजं कामबीजमनन्तरम् ॥७॥
लक्ष्मीबीजं ततः पश्चात् त्रिपुरे चेति तत् परम् ।
भगवतीति तत्पश्चात् अन्ते ठद्वयमुद्धरेत् ॥८॥

द्वादशाक्षर मन्त्र को त्रिपुर सुन्दरी का कुल्लुका कहते हैं। प्रथमतः वाग्भव तदन्तर कामबीज, तत्पश्चात् लक्ष्मीबीज, तदन्तर त्रिपुरे, तत्पश्चात् भगवति, तत्पश्चात् स्वाहा लगाने से द्वादशाक्षरी कुल्लुका होता है जैसे 'ऐं क्लीं श्रीं त्रिपुरे भगवति ठः ठः' ॥७-८॥

अथवा कामबीजञ्च कुल्लुका परिकीर्त्तिता ।
प्रासादबीजं शम्भोश्च मञ्जुघोषे षडक्षरम् ॥९॥

अथवा केवल कामबीज (क्लीं) ही त्रिपुरा का कुल्लुका है। प्रसाद बीज (हौं) शिवमन्त्र का कुल्लुका है। षड्क्षरमन्त्र ही मंजुघोष मंत्र का कुल्लुका कहा गया है—ॐ नमः शिवायः ॥९॥

एकार्णा भुवनेश्वर्या विष्णोः स्यादष्टवर्णकम् ।
नमो नारायणायेति प्रणवाद्या च कुल्लुका ॥१०॥

एकाक्षर मंत्र (ह्रीं) भुवनेश्वरी बीज का कुल्लूका है। विष्णु मन्त्र का कुल्लूका है अष्टाक्षर मन्त्र अर्थात् 'नमो नारायणाय' के पहले ॐ लगाये। 'ॐ नमो नारायणाय' ॥१०॥

मातङ्ग्याः प्रथमं बीजं माया धूमावतीं प्रति ।
बालायाश्च बधूबीजं लक्ष्म्याश्च निजबीजकम् ॥११॥

प्रथम बीज (ॐ) मातंगी का कुल्लुका है एवं मायाबीज (ह्रीं) धूमावती का कुल्लुका कहा जाता है। बालामन्त्र का कुल्लूका है वधुबीज (स्त्रीं) तथा लक्ष्मी मन्त्र का कुल्लुका 'श्रीं' ही है ॥११॥

सरस्वत्या वाग्भवञ्च अन्नदाया अनङ्गकम् ।
अपरेषाञ्च देवानां मन्त्रमात्र प्रकीर्त्तिता ॥१२॥

सरस्वती मन्त्र का कुल्लुका हैं 'ऐं'। अन्नदा देवी का कुल्लुका है कामबीज (क्लीं)। अन्य देवताओं का कुल्लुका उनका अपना ही मन्त्र है ॥१२॥

इयन्ते कथिता देवि संक्षेपात् कुल्लुका मया।
अज्ञात्वा कुल्लुकामेतां यो जपेदधमः प्रिये ॥१३॥

हे देवी ! मैंने संक्षेप में यह कुल्लुका कहा है। हे प्रिये ! जो अधम मनुष्य बिना कुल्लुका को जाने मन्त्र जप करते है—॥१३॥

पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिस्तु जायते।
तथा जपादिकं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रजपेन्मूर्ध्नि कुल्लुकाम् ॥१४॥

वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं और उनकी सिद्धि नष्ट हो जाती है। उनकी जपादि समस्त साधना निष्फल होती है। अतः यत्नपूर्वक मस्तक के उपर मूर्द्धा में कुल्लुका जपे ॥१४॥

। इति सरस्वतीतन्त्रे तृतीय :पटलः।

। तृतीय पटल समाप्त।

चतुर्थः पटलः

ईश्वर उवाच–

अथ वक्ष्यामि देवेशि प्राणयोग शृणुष्व में ।
बिना प्राणं यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥१॥
बिना प्राणं तथा मन्त्रः पुरश्चर्याशतैरपि ।
मायया पुटिता मन्त्रः सत्वधा जपतः पुनः ॥२॥
सप्राणो जायते देवि सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ।
तथैव दीपनीं वक्ष्ये सर्वमन्त्रेषु भाविनि ॥३॥
अन्धकारगृहे यद्वन्न किञ्चित् प्रतिभासते ।
दीपनीवर्जिता मन्त्र स्तथैव परिकीर्त्तितः ॥४॥

ईश्वर कहते हैं—अब प्राणयोग अर्थात् मन्त्र का प्राणसम्बन्ध कहता हूँ । हे देवेशी ! उसे श्रवण करो । जैसे प्राणरहित देह कार्य नहीं करता, उसी प्रकार प्राणरहित मन्त्र सैकड़ों पुरश्चरणों से भी सिद्ध नहीं हो सकता । हे देवी ! 'ह्रीं' मन्त्र से सम्पुटित करके ७ बार मन्त्र जप करने से वह सप्राण हो जाता है । सभी देवों के मन्त्र के साथ यही करना चाहिये । हे भाविनी ! सभी मन्त्रों का दीपनी मन्त्र अब कहूँगा । जैसे दीपक के बिना अंधेरे घर में कुछ नहीं दीखता, उसी प्रकार दीपनी के बिना मन्त्र का तत्व प्रकाशित नहीं हो सकता ॥१-४॥

वेदादिपुटितं मन्त्रं सप्तवारं जपेत् पुनः ।
दीपनीयं समाख्याता सर्वत्र परमेश्वरि ॥५॥

हे महेश्वरी ! मन्त्र को प्रणव (ॐ) से सम्पुटित करके ७ बार जपे । यही मंत्रों का दीपनी करण है ॥५॥

जातसूतकमादौ स्यादन्ते च मृतसूतकम् ।
सूतकद्वयसंयुक्ता यो मन्त्रः स न सिध्यति ॥६॥

मन्त्र जप के आदि में जन्म का शौच तथा मन्त्र जप के अन्त में मरण शौच लगता है । अतः अशौचयुक्त मन्त्र सिद्ध नहीं होते ॥६॥

वेदादिपुटितं मन्त्रं सप्तबारं जपेन्मुखे ।
जपस्यादौ तथा चान्ते सूतकद्वय ॥७॥

इन अशौचों को हटाने के लिये ॐ से पुटित मन्त्र ७ बार जपे ॥७॥

अथोच्यते जपस्यात्र क्रमश्च परमादभुतः ।
यं कृत्वा सिद्धिसङ्घानांमधिपो जायते नरः ॥८॥

अब जप का अत्यन्त अद्भुत क्रम कहता हूँ, जिसके अनुष्ठान से मनुष्य समस्त सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥८॥

नति गुर्वादीनामादौ ततो मन्त्रशिखां भजेत् ।
ततोऽपि मन्त्रचैतन्यं मन्त्रार्थभावनां ततः ॥९॥

प्रथमतः गुरु प्रभृति को प्रणाम करे तदन्तर मंत्रशिखा जपे । तत्पश्चात् मन्त्र चैतन्य की भावना करके उसके उपरान्त मन्त्रार्थ भावना करे ॥९॥

गुरु ध्यानं शिरःपद्मे हृदीष्टध्यानमावहन् ।
कुल्लुकाञ्च ततः सेतुं महासेतुननन्तरम् ॥१०॥
निर्वाणञ्च ततो देवि योनिमुद्राविभावनाम् ।
अङ्गन्यासं प्राणायाम जिह्वाशोधनमेव च ॥११॥
प्राणयोग दीपनीञ्च अशौचभङ्ग मेव च ।
भ्रूमध्ये वा नसोरग्रे दृष्टि सेतुजपं पुनः ॥१२॥
सेतु मशौचभङ्गञ्च प्राणायाममिति क्रमात् ।
एतत्ते कथित देवि रहस्य जपकर्मणः ॥१३॥
गोपनीयं प्रयत्नेन शपथस्मरणान्मम ।
एतत्तन्त्रं गृहे यस्य तत्रांह सुरवन्दिते ।
तिष्ठामि नात्र सन्देहो गोप्तव्यममरेष्वपि ॥१४॥

शिर स्थित पद्म में गुरु ध्यान करे । हृदय में इष्टदेव का ध्यान करके कुल्लुका जपे । तदन्तर सेतु जप, तत्पश्चात् महासेतु जप करना चाहिये ।

हे देवी ! अब क्रमशः यह करे—

निर्वाण जप
योनि मुद्रा भावना
अंगन्यास
प्राणायाम
जिह्वाशोधन

प्राणयोग

दीपनी कर्म जप

अशौचभंग जप

भ्रूमध्य में या नासाग्र में दृष्टि करके सेतु जप करे। पुनः जप के अन्त में यह क्रमशः करे—

सेतु जप

अशौचभंग जप

प्राणायाम

हे देवी ! तुमसे यह सब जप कर्म का रहस्य कहा। मेरी प्रतिज्ञा को याद रखकर इसे गुप्त रखना। हे सुरो द्वारा नमस्कृते ! जिसके घर में यह तन्त्र है, वहाँ मैं रहता हूँ, यह निः संदिग्ध है। इसे देवताओं से भी गुप्त रखना ।।९–१४।।

। इति सरस्वतीतन्त्रे चतुर्थः पटलः ।

। चतुर्थ पटल समाप्त ।

पञ्चमः पटलः

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व तं प्रियम्वदे ।

यस्याज्ञानेन विफलं जपहोमादिकं भवेत् ।। १ ।।

ईश्वर कहते हैं—हे प्रियम्वदे ! जिसे जाने बिना होम प्रभृति विफल हो जाते हैं; उसे कहता हूँ । श्रवण करो ।। १ ।।

कुल्लुकां मूर्ध्नि संजप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत् ।

महासेतुं विशुद्धे तु कण्ठदेशे समुद्धरेत् ।। २ ।।

मस्तक के उर्ध्व में (मूर्धा में) कुल्लुका का जप, हृदय में सेतुचिन्तन, महासेतु का विशुद्ध चक्रमे उद्धार करे अर्थात् उच्चारण करे ।। २ ।।

मणिपुरे तु निर्वाणं महाकुण्डलिनीमधः ।

स्वाधिष्ठाने कामबीजं राकिनीमूर्ध्नि संस्थितम् ।। ३ ।।

मणिपुर चक्र में महाकुण्डलिनी का निर्वाण चिन्तन अधोदिक् रूप से करे । स्वाधिष्ठान में कामबीज का, राकिनी शक्ति का मूर्द्धा में चिन्तन करे ।। ३ ।।

विचिन्त्य विधिवद्देवि मूलाधारान्तिकाच्छिवे ।

विशुद्धास्तां स्मरेद्देवि विसतन्तुतनीयसीम् ।। ४ ।।

हे देवि ! हे शिवे ! यह सब चिन्तन करके मूलाधार से विशुद्ध चक्र पर्यन्त प्रसरित् मृणालसूत्र के समान सूक्ष्मतम कुण्डलिनी का चिन्तन करे । तदनन्तर "सर्पाकृति कुण्डलिनी के अन्त में अवस्थित वेदी स्थान मूलमन्त्र से आवरित है,—' यह चिन्तन बारम्बार करे ।। ४ ।।

वेदिस्थानं द्विजिह्वान्तं मूलमन्त्रावृतं मुहुः ।

विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रियाणां तथैव च ।। ५ ।।

वैश्यानाञ्चैव फट्कारो माया शूद्रस्य कथ्यते ।

अजप्त्वा हृदि देवेशि या वै मन्त्रं समुच्चरेत् ।। ६ ।।

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के लिए प्रणव (ऊं) सेतु है । वैश्य का सेतु है 'फट्' तथा शूद्र का सेतु है मायाबीज 'ह्रीं' । जो हृदय में पूर्वोक्त जप न करके मन्त्रोच्चारण करते हैं, उन्हें मन्त्र जप का अधिकार नहीं है ।। ५-६ ।।

सर्वेषामेव मन्त्राणांमधिकारो न तस्य हि ।
महासेतुश्च देवेशि सुन्दर्या भुवनेश्वरी ॥ ७ ॥
कालिकाया: स्वबीजञ्च तारायाः कूर्चजीजकम् ।
अन्यासान्तु बधूबीजं महासेतुर्वरानने ॥ ८ ॥

हे देवेशी—सुन्दरी का महासेतु है ह्रीं, कालीवीज का क्लीं, तारा देवी का 'हुं' ! अन्य देवताओं का महासेतु है स्त्रीं ॥ ७–८ ॥

आदौ जप्त्वा महासेतुं जपेन्मत्रमनन्य धीः ।
धने धनेशतुल्योऽसौ वाण्या वागीश्वरोपमः ॥ ९ ॥
युद्धे कृतान्तसदृशो नारीणां मदनोपमः ।
जपकाले भवेत्तस्य सर्वकाले न संशयः ॥ १० ॥

पहले महासेतु का जप करके तब एकाग्र हो मंत्र जपे । इस प्रकार से जप करने पर जपकर्त्ता धन की दृष्टि से कुबेरतुल्य, काव्य प्रयोग में वागीश्वर के तुल्य, युद्ध में यमराज के तुल्य तथा रमणी समूह में कामदेव के तुल्य प्रतीत होता है। उसके लिये सभी काल जप के लिये उपयुक्त है ॥ ९-१० ॥

अथ वक्ष्यामि निर्वाण शृणु सावहिताऽनघे ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मातृकाद्यं समुद्धरेत् ॥११॥
ततो मूलं महेशानि ततो वाग्भवमुद्धरेत ।
मातृकान्तं समस्तान्तु पुनः प्रणवमुद्धरेत् ॥ १२ ॥
एवं पुटितमूलन्तु प्रजपेन्मणिपूरके ।
एवं निर्वाणमीशानि यो न जानाति पामरः ॥ १३ ॥
कल्पकोटिसहस्त्रेण तस्य सिद्धिर्न जायते ॥१४॥

अब निर्वाण का स्वरूप कहता हूँ, जिसे सावधान होकर सुनो । प्रथमतः प्रणव का उच्चारण करे । हे महेश्वरी ! इसके पश्चात् मूलमंत्र और अन्त में 'ऐं' बीज का उच्चारण करे । इसके पश्चात् अं से लेकर लं क्षं पर्यन्त समस्त मातृकाओ का उच्चारण करके पुनः ॐ अन्त में लगाये । इस प्रकार के पुटित मंत्र का जप मणिपूर चक्र में करे । हे ईश्वरी ! जो पामर इस निर्वाण प्रक्रिया से अवगत नहीं है, वह करोड़ों कल्प में भी मंत्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ११-१९ ॥

॥इति सरस्वतीतन्त्रे पंचमः पटलः ॥

। पाचवां पटल समाप्त ।

षष्ठः पटलः

ईश्वर उवाच—

अपरैकं प्रवक्ष्यामि मुखशोधनमुत्तम्।
यत्नकृत्वा महादेवि जपपूजा वृथा भवेत् ॥ १ ॥
अशुद्धजिह्वा देवि यो जपेत् स तु पापकृत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जिह्वाशोधनमाचरेत् ॥ २ ॥

ईश्वर कहते हैं—हे महादेवी ! जिसे न करने से जपयज्ञ विफल हो जाता है, उस मुखशोधन नामक उत्तम जपाङ्ग को कहता हूँ।

हे देवी ! जो अशुद्ध जिह्वा से जप करता है, उसे पापी कहते हैं। अतः सभी प्रयत्न द्वारा जिह्वा शोधन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

देव्युवाच—

देवदेव महादेव शूलपाणे पिनाकधृक्।
पृथक् पृथङ् महादेव कथयस्व दयानिधे ॥ ३ ॥
शोधनं सर्वाविद्यानां मुखस्य वद में प्रभो ॥ ४ ॥

देवी कहती है—हे देवदेव ! महादेव, शूलपाणे, पिनाकी ! हे दयनिधे ! हे प्रभो ! आप पृथक्-पृथक् रूप से सभी विद्याओं का मुखशोधन कहने की कृपा करें ॥ ३-४ ॥

महादेव उवाच—

महात्रिपुरसुन्दर्या मुखस्य शोधनं शुभे।
श्री बीजं प्रणवो लक्ष्मीस्तारः श्री प्रणवस्तथा ॥ ५ ॥
इमं षडक्षरं मन्त्रं सुन्दर्या दशधा जपेत्।
शृणु सुन्दरि श्यामाया मुखशोधनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

महादेव कहते हैं—हे शोभने ! महात्रिपुरसुन्दरी का मुखशोधन कहता हूँ। श्री बीज, प्रणव, ॐकार, पुनः श्रीबीज एवं प्रणव लगाये (श्रीं ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ)। हे सुन्दरी ! यह षडक्षर मन्त्र है। श्यामादेवी के मन्त्र जपांग उत्तम मुखशोधन को सुनो ॥ ५-६ ॥

निजबीजत्रयं देवि प्रणवत्रितयं पुनः ।
कामत्रयं वह्निविन्दुरतिचन्द्रयुतं पृथक् ।। ७ ।।
एषा नवाक्षरी विद्या मुखशोधनकारिणी ।
तारायाः शृणु चार्वाङ्गी अपूर्वमुखशोधनम् ।। ८ ।।
जीवनीमध्यमं लज्जां भुवनेशीं ततः प्रिये ।
त्र्यक्षरीयं महाविद्या विज्ञेयामृतवर्षिणी ।। ९ ।।

हे देवी ! निज बीज (क्लीं) तीन, प्रणवत्रय तथा तीन 'क' को पृथक् पृथक्, वह्नि (र), रति (ई) एवं चन्द्र तथा विन्दु का योग कराकर तीन 'क्रीं' बीज (क्रीं क्रीं क्रीं ऊँ ऊँ ऊँ क्रीं क्रीं क्रीं) इस नवाक्षरी को श्यामातन्त्र में मुख-शोधनकारिणी विद्या कहते हैं । हे मनोहर अंगोंवाली ! तारादेवी के अपूर्व मुखशोधन को सुनो । हे प्रिये ! जीवनी बीज को (हुं) बीच में रखकर उसके पूर्व लज्जा बीज (ह्रीं) तथा पश्चात् में भुवनेश्वरी बीज को लगाये (ह्रीं) 'ह्रीं ऊँ ह्रीं' त्र्यक्षरी महाविद्या मुखशोधिनी अमृतवर्षिणी कही जाती है ।। ७-९ ।।

दुर्गायाः शृणु चार्वाङ्गि मुखशोधनमुत्तमम् ।
द्वादशस्वरमुद्धृत्य विन्दुयुक्तत्रयस्तथा ।। १० ।।

हे सुन्दर अंगोंवाली ! दुर्गाबीज के उत्तम मुख शोधन मंत्र को सुनो । विन्दु युक्त तीन द्वादश स्वर (ऐं ऐं ऐं) को ही दुर्गा का मुखशोधन मंत्र कहते हैं ।।१०।।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि बगलामुखशोधनम् ।
वाग्भवं भुवनेशीञ्च वाग्बीजं सुरवन्दिते ।। ११ ।।

हे सुरवन्दिते ! अन्य एक विषय कहता बूँ । यह बगला मुखशोधन है । पहले वाग्भव (ऐं), तदनन्तर भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं), वाग्बीज (ऐं) लगाये । 'ऐं ह्रीं ऐं' ही बगला का मुखशोधन मन्त्र है ।। ११ ।।

मातङ्ग्याः शोधनं देवि अंकुशं वाग्भवस्तथा ।
बीजञ्चाङ्कुशमेतद्धि विज्ञेयं त्र्यक्षरीयकम् ।। १२ ।।

हे देवी ! अंकुशबीज, वाग्भवबीज, पुनः अंकुश बीज को लगाने से त्र्यक्षरी मातंगी मुखशोधन मन्त्रं 'क्रों ऐं क्रों' गठित होता है ।। १२ ।।

लक्ष्म्याश्च शोधनं देवि श्रीबीजं कमलानने ।
दुर्गायाः शोधने माया वाग्बीजपुटिता भवेत् ।। १३ ।।

दुर्गे स्वाहा पुनर्माया वाग्बीजञ्च पुनश्च वाक् ।
प्रणवं दान्तमुद्धृत्य वामकर्णविभूषितम् ॥ १४ ॥
पुनः प्रणवमुद्धृत्य धनदामुखशोधनम् ।
एवं मन्त्रं महादेवि धूमावत्या भवेदपि ॥ १५ ॥

हे देवी ! कमलानने ! लक्ष्मी मन्त्र का मुखशोधन है 'श्रीं'। दुर्गामन्त्र का मुखशोधन है वाग्बीज द्वारा पुटित माया बीज, पुनः यही बीज=ऐं ह्रीं ऐं दुर्गे स्वाहा ह्रीं ऐं ऐं'। प्रणवोच्चारण करके वामकर्णयुक्त (उ) दान्त (घ) का उच्चारण करके पुनः प्रणव लगाये=ॐ धूं ॐ यह है, धनदा का मुखशोधन। हे देवी ! यही है, धूमावती का भी मुखशोधन मन्त्र ॥ १३-१५ ॥

प्रणवो विन्दुमान् देवि पञ्चान्तको गणेशितुः ।
वेदादि गगनं वह्निमनुयुग् विन्दुचन्द्रवत् ॥ १६ ॥
द्व्यक्षरं परमेशानि विष्णोश्च मुखशोधने ।
अन्यासां प्रणवो देवि बालादीनां प्रकीर्त्तितम् ॥ १७ ॥

हे देवी ! प्रणव तथा विन्दु युक्त पंचान्तक (ग) गणेशमन्त्र का मुखशोधन है, अर्थात् 'ॐ गं'। हे परमेश्वरी ! वेदादि बीज (ऊँ) वह्निबीज (रं) मनु (औ) विन्दु तथा चन्द्र को युक्त करते हुये 'ह' कार=ॐ ह्रौं' ही विष्णुमन्त्र का मुख-शोधन मंत्र है, अन्य का प्रणव (ऊँ) है ॥ १६-१७ ॥

स्त्रीणाञ्च शूद्रतुल्यं हि मुखशोधनमीरितम् ।
मुखशोधनमात्रेण जिह्वामृतमयी भवेत् ॥ १८ ॥

स्त्री के लिये शूद्र के ही समान मुखशोधन विहित है अर्थात् प्रणव के स्थान पर दीर्घ प्रणव ओं तथा स्वाहा के स्थान पर 'नमः' का प्रयोग करे। मुखशोधन क्रिया द्वारा जिह्वा तत्काल अमृतमयी हो जाती है ॥ १८ ॥

अन्यथा मूत्रविड्युक्ता जिह्वा भवति सर्वदा ।
भक्षणे दूषिता जिह्वा मिथ्यावाक्येन दूषिता ॥ १९ ॥
कलहै दूषिता जिह्वा तत् कथं प्रजपेन्मनूम ।
तत्शोधनमनाचर्य न जपेत् पामरः क्वचित् ॥ २० ॥

मुखशोधन के विना जीभ विष्ठामूत्र के समान अपवित्र रहती है, क्योंकि अभक्ष्य खाने से, झूठ बोलने से तथा कलह से दूषित हो जाती है। अतः उस अपवित्र

जिह्वा से मंत्रजप कैसे होगा ? पापयुक्त मानव कभी भी जिह्वा शोधन किये बिना जप न करे ।। १९–२० ।।

शैवशाक्तवैष्णवादेः सर्वस्यावश्यमेव च ।
अन्यथा प्रजपेन्मत्रं मोहेन यदि भाविनि ।। २१ ।।

शैवशाक्त वैष्णव सभी इसे जानें । हे भाविनी ! यदि मानव मोहवशात् इसके बिना जप करता है, तब —।। २१ ।।

सर्वः तस्य वृथा देवि मन्त्रसिद्धिर्न जायते ।
अन्ते नरकवासी च भवेत् सोऽपि न चान्यथा ।। २२ ।।
देवो यदि जपेन्मन्त्रं न कृत्वा मुखशोधनम् ।
पतनं तस्य देवेशि किं पुनर्मर्त्यवासिनाम् ।। २३ ।।

उसके समस्त अनुष्ठान व्यर्थ होते हैं और सिद्धि नहीं मिलती । उसे अन्त में नरक जाना पड़ता है । यह अन्यथा कथन नहीं है ।

हे देवेशी ! देवता भी मुखशोधन बिना मन्त्र जपने पर पतन के भागी होते हैं । मृत्यु लोकवासी की बात ही क्या ?

। इति सरस्वतीतन्त्रे षष्ठः पटलः ।
। छठवाँ पटल समाप्त ।।
। समाप्त ।

स्वप्रकाशित तन्त्रशास्त्र के अन्य ग्रन्थों की सूची

१. ईशानशिवगुरूदेवपद्धति - सं. टी. गणपतिशास्त्रिण
आंग्ल भूमिका सहित - एन. पी. उण्णी (४ भाग में) १०००.००

२. तारा-भक्ति-सुधार्णव - मूल तथा आंग्ल भूमिका सहित
आर्थर एवलान, सं. श्री पंचानन शास्त्री ३००.००

३. योगिनीतंत्रम् - सं. प्रो. विश्वनारायण शास्त्री १७५.००

४. कौलावली - मूल तथा आंग्ल भूमिका सहित, आर्थर एवलान १००.००

५. ब्रह्मसंहिता एवं विष्णुसहस्त्रनाम - शांकर भाष्य
मूल तथा आंग्ल भूमिका सहित - आर्थर एवलान १००.००

६. शतरत्नसंग्रह - मूल तथा आंग्ल भूमिका सहित
- आर्थर एवलान १००.००

७. कामाख्यातंत्र - मूल संस्कृत, आंग्ल भूमिका सहित
- सं. विश्वनारायणशास्त्री ७५.००

८. कुलपूजनचन्द्रिका - मूल संस्कृत, आंग्ल भूमिका सहित
- बाबूलाल शुक्ला ४०.००

९. शांभवीतन्त्र - म. म. डॉ. पं. गोपीनाथ कविराज जी
भाषा शब्दांकनकार - एस. एन. खण्डेलवाल ६०.००

१०. निरूत्तरतन्त्रम् - अनुवादक - एस. एन. खण्डेलवाल ५०.००

११. जपसूत्रम् - स्वामी प्रत्यगात्मानन्द विरचित,
अनुवादक - एस. एन. खण्डेलवाल, १ से ६ भाग प्रत्येक भाग १००.००

प्रकाशक

भारतीय विद्या प्रकाशन

पोस्ट बॉक्स नं. ११०८,
कचौडी गली, वाराणसी
(उ.प्र.) २२१ ००१

१, यू. बी. जवाहर नगर,
बँगलो रोड़, दिल्ली-११०००७